द्वितीय दृश्य

(नंदन कानन के कुसुमित तरुकुंज। विविध लता-गुल्मों का आश्रय लिये रंभा, मेनका, उर्वशी, तिलोत्तमा आदि अप्सरायें खड़ी हैं। पार्श्व में आकाश-गंगा बह रही है।)

उर्वशी—मैंने एक अभागे कवि को देखा
चिथड़े से लिपटे थे उसके तन पर,
अधरों पर थी स्मिति की फीकी रेखा
देख रहा था दूर क्षितिज पर,
वह संध्या की नीली-पीली किरणों को
अर्थ-रहित सी रंग बदलते,
रवि-चुंबित हिमगिरि से गिरते गेरु के-से झरनों को
मँहदी की रेखा लज्जा-सी रंग देती,
ज्यों नयी बहू के गोरे-गोरे चरणों को,
उसकी भूरी चक्करदार पुतलियों में, मैं
देख चुकी झुककर छवि के आवरणों को
मेनका—मैंने एक पथिकबाला को देखा,
सोयी थी वह फैला अलकें धूसर,
फटे बादलों में जैसे विधुलेखा
वहीं हरित तरु के अंचल से देख रहा था
एक अपरिचित युवक उझक, झुक
मधु लादे स्वर्णिम पाँखों पर मधुमक्खियाँ,
इंगितों में बतलातीं रुक-रुक
मानो कहती थीं—'बुन देंगी हम इसकी कटि में
अपने जैसा स्वर्णांशुक'
चोरी से स्वर में मिठास लाने को मैंने
चूम लिया था उसका वह भोला निद्रित मुख

रंभा— एक फूल-सी बाला बैठी थी सागर-तट पर
लहरों-सा चंचल था उसका अंचल
वह इतनी कोमल थी मानो तरल लहरियाँ
गयीं एक नारी की आकृति में ढल

बाहर आती जब वह ज्योत्स्ना-निशि में
गोरे तन पर तप्त फफोले पड़ते
छूकर कोमल पग धरती सकुचाती
फूल हजारों आगे-आगे झड़ते

पहले चुंबन से नीली-पीली हो
बिखर गयी वह जलबुद्बुद-सी क्षण में
या सौरभ की मृदुल लहरिका बनकर
छन-छनकर घुल गयी प्रभात-पवन में

तिलोत्तमा—एक कुसुम के हिम से भरे कटोरे में
नाच रही थी मैं सित बाहें फैला
संध्या जवा-गर्भ से निकली मादन
अंतरिक्ष था सौरभ से मटमैला

कोटि तड़ित-पातों-सी आभा फूटी
काँप उठा कैलाश शरद-हिमकण-सा
अपने मुकुल-भवन से मैंने देखा
स्मर को सहसा जलते सूखे तृण-सा

मेनका— काम जल गया था फिर भी कैसे वह
त्रिभुवन-जयी उर्वशी के अधरों पर
चुंबन की आकांक्षा बनकर रोया
जगते शिशु-सा करता घात उरों पर?

कच के मेचक कुंचित पृष्ठ-कचों पर
चिबुक-तूलि से प्रणय-याचना लिखकर

दृग-मुद्रण मिस, भागी जब कविबाला
खिलखिल हँसती, सुने बिना प्रत्युत्तर

किसने उसकी हरिणी-सी चिर-चंचल
लाज भरी नत आँखों के कोनों में
किया मधुर इंगित था, जिससे कच का
रूप सिमट आ गया तुरत दोनों में?

मेनका— रति-विलाप से द्रवित देवपति ने फिर
सुना एक दिन अमृत-कलश-हित भूपर
गौतम-वधू-गेह में जाकर छल से
जीवित किया उसे मंत्रित-नूपुर-स्वर

रंभा— याद तुम्हें है वृद्ध उमापति से फिर
लिया कुसुम-धनु ने भी कैसा बदला
जब एकाकी मधुवसंत-उपवन में
अर्ध-नग्न-तनु फिरती थी वह अबला

राहुमुक्त तारापति जैसे नभ में
सँग-सँग लज्जारुणा रोहिणी के
मत्त वृषभ-से शिव वैसे फिरते थे
पीछे-पीछे मुग्ध मोहिनी के

तिलोत्तमा—और याद है उस रसाल-तरु से सट
मुकुलित ज्यों आमूल माधवी लतिका
रोयी थी ईर्ष्यालु उर्वशी कितनी
सारी रात विकल ज्यों प्रोषित-पतिका

(एक अन्य अप्सरा का प्रवेश)

मेनका— अरे, यह नवागंतुका कौन है?

नवागंतुका—महाशून्य से उगी प्रथम ऊषा-सी मैं
मेरे चुंबन से संसृति जागी—

मधुर गर्भ-पीड़ा ले, ग्रह-खग दौड़े
पक्व शस्य-पिंडों के अनुरागी
नव मातृत्व और कवि की आत्मा में
छविमय केलि-भवन रचकर अपना
आदि धर्म-संस्थापक के उर में मैं
सोकर लगी देखने सुख-सपना—
नयी समाज-व्यवस्था के जिसमें सब
बुरे भले हो जायेंगे, यह संसृति
अपना सहज स्वभाव छोड़ देगी, पर
भागी यहाँ देख निज विकृत मुखाकृति

(एक दूत का प्रवेश)

दूत— फूलों को झुलसानेवाली तरल अग्निधारावर्षी
भू-नभ से शत अर्बुद सेना बढ़ी आ रही सागर-सी
दशों दिशायें ध्वनि से पूरित कंपित पीपल पत्तों-सी
उगल रही हैं सैन्य दलों को मधुमक्खी के छत्तों-सी
यंत्रसज्ज नभ-पोत भयानक उड़नकिलों-से बड़े-बड़े
निज से चालित भटक रहे हैं जैसे मेघों के टुकड़े
पवन-सदृश अदृश्य शक्तियाँ, प्रलयंकर शस्त्रास्त्र लिये
भौतिकता की महा भयंकर शक्ति-रूप वारुणी पिये
आते हैं रण-कुशल दैत्यगण, जिनसे लोहा लेने को
दैवी रण-वाहिनी चली है समुचित उत्तर देने को
उधर यंत्र की प्रबल शक्ति है, इधर अमर आत्मा के मंत्र
चले आजमाने निज-निज बल युगल विरोधी शासन-तंत्र

रंभा— प्रलयकाल के मेघों से रजकण के उठते यूथ महा
अंबर के नीचे यह नूतन अंबर सा तन गया, अहा!

मेनका—शंखोज्ज्वल ऐरावत पर स्थित, ऊँचा किये वज्रयुत हस्त
सुरपति देखो बढ़े जा रहे सेना-संचालन में व्यस्त

सप्तवर्ण अश्वों से खिँचते, स्वर्ण-किरण-दीपित रथ पर
द्वादश-आत्मा भानु खड़े हैं मानो आज प्रलय-पथ पर

दूत— वृद्ध दधीचि-अस्थि से निर्मित देवराज का वज्र प्रचंड
जिसके मस्तक से टकराकर स्वयं हो गया था शतखंड
पिता और पितृव्य भ्रातृयुग के वध का लेने प्रतिशोध
वैरोचनि बलि ही आया है सुरपति से लड़ने सक्रोध

उर्वशी—वर्ह-पीठ पर शरसंभव, लो, सुर-सेना को लिये, बढ़े
जघनों में धृत शाँर्ग धनुष को विष्णु, देवपति बीच अड़े
मेघघटा-सी राक्षस-सेना देखो उधर बढ़ी आती
संख्याधिकता से असंख्य गज-अश्वों से कुचली जाती
मायामय मयदल आगे है, पीछे कालनेमि दुर्वध्य
बलि तपता मध्याह्न-तपनि-सा उदयाचल-अस्ताचल-मध्य
वाम पार्श्व में शाल्व, दाहिनी ओर तारकासुर बलवान
साठ लाख अर्बुद सेना ले शिव से लड़ने आया बाण

मेनका—स्वस्ति-मंत्र पढ़ रहे वृहस्पति चंद्रेतर ले सब के नाम
मूर्त महामृत्युंजय-से कवि, देखो, करते उन्हें प्रणाम
युग महार्णवों-से दोनों दल बाणों की बौछारें झेल
गुँथे जा रहे महाप्रलय में ज्यों भू-नभ का होता मेल

रंभा— देखो वे लड़ते हैं कैसे!
काले पर्वत-सदृश भयंकर मानो यम के भैंसे
वज्रपात से मेरुकूट ज्यों, गिरते योद्धा ऐसे
महाशून्य में कंदुक-से उड़ जो जैसे के तैसे
विद्युत्-आलोकित रजनी में धूमकेतु शत जैसे
स्वर्ण-पताकायें, रथ, पहिये उड़ते नभ में वैसे
भेंट रही ज्यों सृष्टि-सुंदरी भुज भर मूर्त प्रलय से
भेद रहे नभ की छाती से अपनी-अपनी जय से

मेनका—देखो, हाय! सुमेरु-सदृश सुविशाल पंख फैला अपने
महाभयंकर गरुड़ नील नभ में पीछे को भाग रहा—

विष्णु-सहित, देवों के सारे भग्न हुए जय के सपने
बलि के तीक्ष्ण प्रचंड शरों की देख अमोघा शक्ति महा

(एक दूत का प्रवेश)

दूत— स्वप्न, घोर दु:स्वप्न, हाय!
एक विशाल गवेंद्र घुस गया नंदनवन में पर्वत-काय
जिसकी सींगों से बिँध-बिँधकर टूटे नखत-कुसुम-समुदाय
भाग रही थीं शची-सहित सुरवधुयें डरकर जैसे गाय
गिरती, पड़ती, रौंदी जाती, सुरप देखता था निरुपाय
डर है मुझको नहीं यहाँ भी वह उन्मत्त असुर आ जाय

(एक अन्य दूत का प्रवेश)

दूसरा दूत—कर लो जिससे जो बन जाय
मैंने एक स्वप्न देखा है इससे अधिक भयंकर, हाय!
थे विशाल जल-दैत्य परस्पर लड़ते ज्यों पर्वत-समुदाय
जलती थीं लहरें ज्यों शत-शत धूमकेतु जल में गिर जायँ
दो टुकड़े हो उड़े पोत शत, कितने थे जल-मग्न-प्राय
लक्ष-लक्ष देवों से भरकर केहरि-धृत-मृग-से असहाय

(चौथे दूत का प्रवेश)

चौथा दूत— दु:संवाद, पराजय, पीड़ा, अत्याचार
रोओ शोषित के आँसू ओ नंदन की कोमल कलियो!
सुर-बालाओं की प्रियतम-शृंगार! सदा खिलती थीं तुम
जिन देवों की पूजा के हित, आप वही अपनी बलि को
आज खड़े हैं शस्त्र-शास्त्र-च्युत रण में जैसे हिम-हत द्रुम।

(एक ओर से देवराज इंद्र, वरुण और अग्नि का क्षिप्रगति से प्रवेश)

वरुण—सम्राट्! सम्राट्!

इंद्र— सम्राट् नहीं वरुण, धड़ के बिना मस्तक नहीं रह सकता।
साम्राज्य-शक्ति के अभाव में आज मैं भी सम्राट् नहीं

हैं। आज मैं एक साधारण प्राणी हूँ जिसे इंद्र का नाम देना उसका उपहास करना है। आज मैं शतक्रतु होते हुए भी इंद्र नहीं हूँ। (अग्नि की ओर देखकर) भौंहें तानने से कोई लाभ नहीं, अग्निदेव! तुम्हारी प्रचंड ज्वालामयी लपटें बलि के प्रबल बाणों की फुफकार से हतभाग्य की ईर्ष्या के समान क्षण मात्र में बुझ जायेंगी। उनकी चिनगारियाँ दरिद्र के रोष के समान आँखों से निकलते-निकलते आँसू की धारा बन जायेंगी। अपने दुर्भाग्य को समझकर मौन धारण करना ही उचित है, वरुणदेव! जाओ, जितनी शीघ्र हो सके तुम लोग ब्रह्मलोक की ओर भागो। मैं भी वहीं आ रहा हूँ।

(नेपथ्य में गीत-ध्वनि)

गीत

जीवन-संध्या में आज, पथिक! तुम थके और हारे-से हो
सित, मौन, विषण्ण, प्रभात-गगन के अस्तोन्मुख तारे-से हो
सुख-दुख की लहरों पर तिरती
क्षण-क्षण में उठ-उठकर गिरती
नौका धूमिल तट पर फिरती जलनिधि मीठे-खारे से हो
तुम अपनी बाजी खेल चुके
सुख भोग चुके, दुख झेल चुके
तुम हो जग से बेमेल चुके पानी जैसे पारे से हो
आता वसंत अब नये पात
द्रुत दूर हटो तुम जीर्ण-गात
इस भव-तम-रजनी का प्रभात, नव युग के जयकारे-से हो
जीवन-संध्या में आज, पथिक! तुम थके और हारे-से हो

(नेपथ्य में कोलाहल। अप्सरायें और दूत एक-एक कर चले जाते हैं।

सबसे अंत में उर्वशी का प्रस्थान।)

इंद्र— उर्वशी गयी, आत्मा के आवर्तों में
चक्कर लगाने वाले स्वप्निल संगीत की
शेष झंकृति स्मृति-सी है बची प्रेम की
हारे हुए प्रेमी के हृदय में, तो मैं भी चलूँ,

विदा सतत मधुवर्षिणि, चिर-यौवना, देवताओं की भोग्य, चपल अप्सराओ नंदन की! विदा मनोज्ञ सोम के पात्र पल्लव से अरुणिम करतल में, आज न मैं पूजा के योग्य हे सुरपुर-वासियो! आज मैं काल-यज्ञ का बलिपशु मात्र

विदा कृशोदरि उर्वशि! जिसके नूपुर की रुनझुन सुनकर प्रात जगा करता था मैं, बलि के रति-मंदिर की अबसे सुंदरतम शृंगार, विदा, हतभाग्य इन्द्र के मानस पर अविचल शासन करनेवाली शची! आज दुखिया सबसे।

पाप गौतमी को छलने का घोर, स्वर्ग को निगल चला अजगर-सा जबड़ों को फाड़े, या ऋषियों को बारंबार तप से भ्रष्ट किया जो मैंने, आज वही लेते बदला स्वस्ति-मंत्र-युत हाथ उठाये, बलि का करते-से सत्कार

दंभपूर्ण अधिकार, स्वार्थ या चिर-अबाध वासना-विलास काल बना देवत्व-हेतु, अनियंत्रित शासन-सत्ता ही हाय! सभी दोषों की जड़ थी, भूल गये हम भी हैं दास— प्रकृति-शक्ति के और अमरता भी है अन्य-प्रदत्ता ही।

चली भाग्य से लेकिन किसकी! त्रिभुवन-भर्ता विष्णु स्वयं भाग गये भीगी बिल्ली-से, कुंठित-बुद्धि वृहस्पति भी विफल वज्र में प्राण नहीं दे पाये बन कर के अक्षम, बलि के बाणों के सम्मुख रुक गयी दिवाकर की गति भी

(नेपथ्य में राक्षसों का कोलाहल सुनकर)

मातृभूमि! सुरभूमि! विदा ओ जन्मभूमि! सुख-भोगों की सुषमामयी प्रतीक, आज से तेरे नंदन कानन में, दुग्धवती नदियों में, हीरक-भवनों में, उद्योगों की कलापूर्ण पुरशालाओं में, चिर-कुसुमायित गिरि-वन में, चिर-वसंत-गुंजित कुंजों में, नूपुर के रव से मुखरित, चिर-नवयुवती बालाओं से कूजित केलि-गृहों के बीच, रंभा-तिलोत्तमा-नूपुर-रव-मुखरित, मणि-मुक्ता-मंडित देव-सभाओं में अब से मैं फिर न सकूँगा, बरबस खींच निज को दूर लिये जाता हूँ तुमसे, मात! क्षमा करना स्वर्गों से सौगुनी बड़ी है और अधिक है प्यारी भी मुझको मेरी प्रिय स्वतंत्रता, मत उदास घुट-घुट मरना अब पतझड़ है तो आयेगी कल वसंत की बारी भी।

(प्रस्थान)